मन्दिर संस्कृति का प्रार्दुभाव और पर्यटन

देवी – देवताओं, साधु – संतों,तपस्वियों, मुनियों के देश भारत में उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक मन्दिर प्राचीन काल से वर्तमान समय तक भारतवासियों की आत्मिक श्रद्धा और आस्था का केंद्र रहे हैं। धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं। धार्मिक यात्राएं प्राचीन समय से ही प्रचलन में रही हैं। धार्मिक भावनाओं के चलते श्रद्धालु आवागमन के साधनों की कमी की वजह से पैदल यात्रा करते थे। भारतीय संस्कृति के भव्यतम प्रतीक मन्दिर अपनी बेमिसाल कारीगरी से विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का भी प्रबल माध्यम बन गए हैं। श्रद्धालुओं और मंदिरों का नाता कितना गहरा है यह इन पावन स्थानों पर पूरे वर्ष आने वाले दर्शनार्थियों की अपार भीड़ से लगाया जा सकता है। विभिन्न युगों में राजाओं और धर्मालु व्यक्तियों द्वारा बनवाए मन्दिर क्रमिक विकास का परिणाम है जो देश की आजादी के बाद वर्तमान समय तक अनवरत रूप से जारी हैं। आइए ! हम मन्दिर – संस्कृति के क्रमिक विकास पर एक नज़र डालते हैं।

गौरवमय पृष्टभूमि

वह स्थान जहां किसी देवी या देवता की पूजा की जाती हैं मन्दिर कहे जाते हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में जन मानस की आस्था और विश्वास से जुड़े मंदिरों का आरम्भिक स्वरूप ऐसा नहीं था जैसा आज हम देखते हैं। देवी – देवताओं की पूजा किसी न किसी रूप में प्रचलित रही। सृष्टि के प्रारम्भ में देवताओं और आत्माओं के वास स्थान के रूप में वृक्षों की पूजा का प्रचलन रहा। कई प्रकार के वृक्षों का पूजन किया जाता था। हड़प्पा संस्कृति से ही वृक्षों की पूजा का पता चलता है। अति प्राचीन तमिल ग्रंथ अहनानुरू में एक बरगद के पेड़ का वर्णन मिलता है जिसके चारों ओर दीवारे बनी थी। वृक्ष धार्मिक अनुष्ठानों का माध्यम भी होते थे। इसके बाद एक चबूतरे पर देवी – देवता को स्थापित कर पूजा जाने लगा। धर्म, आस्था और विश्वास की हमारी आरम्भिक पूजा परमपराएं आज तक निर्बाध रूप से हर समाज में प्रचलित हैं। चबूतरों को लोक चित्रण कला से सुंदर बनाया जाने लगा हैं। मुक्ताकाशी ये स्थान देवताओं के थान, स्थान, कहे जाते हैं। उत्तर और दक्षिण भारत में वृक्षों एवं चबूतरे पर देव पूजा समान रूप से प्रचलन में हैं। धीरे – धीरे छतदार मंदिरों का निर्माण शुरू हुआ। जब अलंकरण का प्रयोग शुरू हुआ तो वृक्षों का रूपांकन मंदिरों की शिल्प कला में भी दिखाई देता है।

ऐतिहासिक प्रमाणों से ज्ञात होता है कि हिन्दू मंदिरों का स्वरूप गुप्त काल में सामने आया और इस युग में मन्दिर जैसी संरचना का प्रार्दुभाव हुआ। इस समय में मोटी दीवारों पर सपाट छत का एक गर्भगृह बना कर मुख्य देवता की मूर्ति स्थापित की गई और गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा के लिये स्थान रखा गया और बाद में गर्भगृह पर शिखर बना। प्रारंभिक मंदिरों का वास्तु विन्यास बौद्ध बिहारों से प्रभावित

था। इनकी छत चपटी तथा इनमें गर्भगृह होता था। मंदिरों में रूप विधान की कल्पना की गई और कलाकारों ने मंदिरों को साकार रूप प्रदान करने के साथ ही देहरूप में स्थापित किया। महाकाव्य और सूत्र कालीन साहित्य में मंदिर की अपेक्षा देवालय, देवायतन, देवकुल, देवगृह आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

गुप्त काल से पूर्व की पृष्ठभूमि को देखें तो वैदिक युग में अग्नि, इंद्र, वरूण,रूद्र, यम यक्ष,वामन,सूर्य,,चन्द्र, विष्णु, पशुपति,महादेव आदि प्रमुख देवता थे। वैदिक काल में मूर्तियों एवं स्थापत्य के कोई अवशेष प्राप्त नहीं हुए है, प्रकृति पूजा का ही विधान था। बिहार के लोरिया – नंदनगढ़ से सोने के पत्ते पर अंकित एक महिला आकृति को इस काल की माना जा सकता है जो संभवत: पृथ्वी माता अथवा श्री लक्ष्मी की है। उत्तर वैदिक काल – वैदिक काल की भांति उत्तर वैदिक काल के साहित्य एवं कुछ जगहों पर मिले अवशेषों से प्रचुर मात्रा में कला विषयक जानकारी प्राप्त होती है। हमारा सूत्र साहित्य, महाकाव्य, बौद्ध – जैन साहित्य, पुराण,शिल्प शास्त्र, कालिदास के काव्यों एवं नाटकों , कल्हन द्वारा रचित राजतरंगिनी, पतंजलि के महाभाष्य, पाणनी की अस्टाध्यायी आदि में कला विषयक सूचनाएं व्यापक रूप से मिलती हैं। इस काल के साहित्य में तीन प्रकार की नागर,द्रविड़ और वेसर शैलियों का उल्लेख मिलता हैं।

वैदिक काल के बाद 727 ई. पू. से 325 ई. पू. तक शैशु नाक एवं नंद काल में राजाओं,स्त्री एवं पुरुषों की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। मौर्य काल (325 ई. पू. से 185 ई. पू.) चन्द्रगुप्त मौर्य के समय भवनों पर मूर्तियां बनाई जाती थी। चंद्रगुप्त के पौत्र अशोक के समय मूर्ति कला का स्वतंत्र विकास स्तम्भ, विहार,स्तूप और शिलालेख के रूप में साफ दिखाई देता हैं। इनके समय की कृतियां भारत को ही नहीं विश्व को मूर्ति कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट देन हैं। सारनाथ का सिंह स्तम्भ भारत की महामुद्रा के रूप में स्वीकार किया गया। इनके समय का सांची का स्तूप अति विशिष्ट है। इस काल की मूर्तियां वाराणसी, पाटलिपुत्र, मथुरा, अहिच्छत्र, विदिशा – ओडिशा, कुरुक्षेत्र एवं मध्यप्रदेश आदि क्षेत्रों के विशाल भू – भाग से प्राप्त हुई हैं। शुंग काल(188 ई. पू. से 30 ई.) मौर्य काल के अंतिम शासक वृहदरत को मार कर पुष्यमित्र शुंग ने मध्य भारत पर आधिपत्य कर लिया तथा आगे समस्त उत्तर भारत को अपने राज्य में कर लिया।

सांची स्तूप के चारों ओर प्रदक्षिणा की दोहरी वेदिका बनवाई एवं सातवाहन शासकों ने चारों दिशाओं में अलंकृत द्वार बनवाए। इस काल का दूसरा उदाहरण इलाहबाद – जबलपुर के मध्य भारहुत स्तूप है। ओडिशा में उदयगिरी और खंडगिरी गुफाएं भी इसी काल में बनी। कुषाण काल (50 ई. से 300 ई.) कुषाण वंश में कनिष्क सबसे शक्तिशाली शासक हुआ जिसने 20 वर्ष शासन किया। यह महायान बौद्ध धर्म का अनुयायी था अत: पेशावर और कई स्थानों पर विहार व स्तूप बनवाए गए। मूर्ति कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल रहा। बुद्ध कला में गांधार शैली और मथुरा शैली का उदय हुआ और अनेक मूर्तियां बनाई गई। इसमें मथुरा मूर्ति शैली लोकप्रिय हुई। आंध्र एवं सातवाहन काल (200 ई.पू. से 300 ई.पू.) उत्तर भारत में जिस समय गांधार और मथुरा शैली का उदय हुआ उसी समय में दक्षिणी भारत में आंध्र शासकों का राज्य था जिन्होंने कला प्रेम के वशीभूत अनेक बौद्ध स्तूपों का निर्माण कराया।इनके समय 200 ई.पू. में अमरावती में विशाल बौद्ध स्तूप बनवाया गया। गुंटूर जिले के नागार्जुन कोंडा में भी सातवाहन ने एक स्तूप का निर्माण कराया। इन दोनों में रोमन कला का प्रभाव पाया जाता है। नाग (भार शिव) , वाकाटक काल (185 ई. से 320 ई.) दूसरी शताब्दी ई.पू. में शुंग राज्य के पतन के बाद नाग

वंश का उत्थान हुआ। विदिशा नगरी में इनका राज्य था। नाग – भार शिव काल में " नागर शैली" का विकास हुआ।

गुप्त काल (320 ई. से 600 ई.)
गुप्त ' नामक राजा ने 275 ई.के लगभग गुप्त राज्य की नीव डाली। इसके पोत्र चंद्रगुप्त विक्रमादित्य और इसका पुत्र समुद्रगुप्त दोनों कला प्रेमी थे। इनके काल में चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला की उन्नति हुई। गुप्त काल में अनेक बौद्ध स्तूप,विहार,स्तम्भ और गुहा – मंदिरों का निर्माण किया गया। इस काल की प्रमुख शैलियां मथुरा एवं सारनाथ केंद्रों में देखी जाती हैं। बुद्ध मूर्तियां भी वृहद स्तर पर विभिन्न मुद्राओं में बनवाई गई।

गुप्त कालीन प्रमुख मंदिर –
गुप्त काल में मंदिर बनाने का विकास प्रारम्भ हो गया था। गुप्त काल स्थापत्य कला, साहित्य और संस्कृति के लिए स्वर्ण युग कहा गया है। इस काल में एरन का विष्णु मंदिर मध्यप्रदेश के सागर जिले से 75 किमी की दूरी पर स्थित है। यह गुप्त कालीन महत्वपूर्ण विष्णु मंदिर में से एक है। जिसमे एक विष्णु प्रतिमा जिसकी ऊंचाई लगभग 10 फिट है। एक वराह की प्रतिमा जिसके पुरे अंग में चित्रकारी की गयी है। और एक गरुड़ स्तम्भ है। महेश्वर और त्रिपुर में पाये गये अवशेषों के समकालीन गया है।

भूमरा का शिव मंदिर –
भूमरा सतना जिला मध्यप्रदेश में स्थित है। इस मंदिर का निर्माण 5 वी शताब्दी का माना जाता है। इसमें एक मुखी शिवलिंग स्थापित है।
साँची का मंदिर – ये मदिर गुप्तकाल का मदिर है और भारत के प्राचीन मंदिर में से एक है इस मदिर की खोज ब्रिटिश अफसर टेलर ने 1818 ई में की थी। इसे उदयगिरी के गुफाओं के समकालीन मन जाता है। इसका निर्माण चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय के समय बनवाया था।

मध्यप्रदेश के सतना जिले के पिपरिया में विष्णु मंदिर, जबलपुर जिले के तिगवा में विष्णु मंदिर एवं पन्ना जिले के कुठार में पार्वती मंदिर गुप्त कालीन हैं।

देवगढ़ का दशावतार मंदिर –
देवगढ़ की दशावतार मंदिर देवगढ़ जिला ललितपुर उत्तर प्रदेश में स्थित है। देवगढ़ बेतवा नदी के तट पर स्थित है। ये मंदिर उत्तर भारत के सबसे प्राचीन मंदिरों में से एक माना जाता है। जिसमे भगवान विष्णु के पूरे दस अवतार को अलग -अलग शिल्प के रूप में उकेरा गया है। मंदिर वास्तु कला और शिल्प काला का मत्वपूर्ण उदहारण है। मंदिर के द्वार पर गंगा -जमुना की नक्काशी की गयी है।

यहाँ की मूर्तियों में प्राचीन भारतीय धार्मिक के सभी चिन्हों को उकेरा गया है जिसमे शंख ,कमल ,हाथी ,को चित्रित किया गया है। यह मंदिर लगभग 6 वी सदी का माना गया है।
खोह का शिव मंदिर –
मध्यप्रदेश में सतना जिला के उचेहरा तहसील में खोह एक प्राचीन गाँव है। जहाँ पर गुप्त कालीन शिव मंदिर और ताम्रपत्र प्राप्त हुए है ये मंदिर गुप्त काल के स्थापत्य कला के लिए महत्वपूर्ण है। यहाँ कुल 8 दानपात्र प्राप्त हुए है जिसमे ब्राह्मणो को दिए गए दान का उल्लेख मिलता है।

मणिनाग मंदिर राजगीर बिहार के नालन्दा जिले में है। इस मंदिर का अति प्राचीन इतिहास बताया जाता है इस मंदिर को महाभारत काल जोड़ा जाता है। यहाँ पर महाभारत काल में जारासंध पूजा किया करते थे। इसे पहले नागों का तीर्थ माना जाता था। खुदाई से भी नागों के फन की प्रतिमाये अवशेष प्राप्त हुए है। यहाँ एक मणिनाग का मंदिर है। यहाँ गुप्त कलीना अवशेष प्राप्त हुए। इस काल का भीतरगाँव का कृष्ण मंदिर उत्तरप्रदेश के कानपुर जिले मै गुप्तकालीन वास्तुकला का बेजोड़ नमूना है यह मंदिर ईंटों से बना है ।

मुकुंदरा मन्दिर राजस्थान के कोटा – झालावाड़ मार्ग पर कोटा जिले में स्थित है। भीम की चौरी के नाम से प्रसिद्ध मन्दिर के केवल कुछ भग्नावशेष रह गए हैं। अद्भुत झल्लरी वादक प्रतिमा कोटा संग्रहालय में सुरक्षित है। कोटा से 30 किमी. दूर चारचौमा महादेव गुप्त कालीन मन्दिर है। इसका चतुर्मुख शिवलिंग अद्भुत है। सिरपुर का मंदिर सिरपुर जिला -महासमुंद छत्तीसगढ़ में स्थित है। इसे गुप्त कालीन समय का साक्ष्य माना जाता है। इस मंदिर का निर्माण वासटा देवी ने अपने पति हर्षगुप्त की याद में बनवाया था।

पूर्व मध्यकाल (600 ई. से 800 ई.)

गुप्त साम्राज्य के बाद भारत में कोई स्थाई साम्राज्य स्थापित नहीं हो सका। सारे मध्यकाल में कन्नोज के शासक ‘ हर्षवर्धन ‘ ने (630 ई.से 647 ई.) तक सुदृढ शासन स्थापित किया। पूर्व मध्य काल में चालुक्य कालीन कला के बादामी, अयहोल, पत्तदकल, महाकुट, राष्ट्रकूट कालीन कला के एलोरा, एलीफेंटा, कन्हेरी और पल्लव कालीन कला के मामलपुरम – महाबलीपुरम(मामलल शैली यहीं तक सीमित रही) प्रमुख केंद्र रहे हैं।

उत्तर मध्यकालीन (900 ई. से 1300 ई.)

उत्तर मध्यकाल में मन्दिर स्थापत्य विकास का वैभव अपने चरम पर था। इस काल के ओडिशा मंडल में कोर्णाक, पुरी के मन्दिर और भुवनेश्वर में लिंगराज, मुक्तेश्वर, परशुराम, राजरानी प्रमुख मन्दिर हैं। बुंदेलखंड में चंदेल – हर्ष देव – यशोवर्धन – घंग शासकों के खजुराहो में शेव, वैष्णव, शाक्त एवं जैन मंदिर मुख्य हैं। मध्य भारत में प्रतिहार, परमार,कल्चुरी शासकों के ग्वालियर का सास बहू मन्दिर, नीलकंठ या उद्येश्वर मन्दिर एवं जबलपुर का चौसठ योगिनी मंदिर प्रमुख हैं। राजस्थान में गुजरात सीमा पर आबू पर्वत पर सोलंकी (चालुक्य) शिल्प का चमत्कार देलवाड़ा के विमलवसही और लुनवसही मंदिरों में देखा जा सकता है।

चित्तौड़गढ़ में कालिका माता, कुम्भा स्वामी, समधिश्वर, उदयपुर जिले में जगत का अंबिका मन्दिर, नागदा का सास – बहू मन्दिर, उन्वास का दुर्गा मन्दिर, जोधपुर जिले में ओंसियां, बुचकेला और मंडोर मंदिर, जयपुर जिले में बांदीकुई से 7 किमी.दूर आभानेरी मन्दिर, बाड़मेर का किराडू मन्दिर, सीकर का हर्षनाथ मन्दिर, पाली जिले का रणकपुर मन्दिर, कोटा – चित्तौड़ जिलों की सीमा पर बड़ोली का मन्दिर, झालावाड़ जिले में चंद्रभागा नदी किनारे भग्न शिव मन्दिर और अलवर जिले के पहाड़ नगर में नील कंठेश्वर मन्दिर उत्तर मध्यकालीन समय के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

तमिल- दक्षिण शिल्प

उत्तर मध्यकालीन समय में तमिल में द्रविड़ शैली में मंदिरों का निर्माण कराया गया। यहां चौल राजवंश (850 ई.से 1267 ई.) तक के समय में तंजोर का शिव वृहदेश्वर मंदिर और गनगेकोंड चौलपुरम मन्दिर महत्वपूर्ण निर्माण हैं। तमिलनाडु के अर्काट जिले में चिदम्बरम का नटराज मन्दिर, दासुरम में एरावतेश्वर मन्दिर एवं जैन कला का गोमतेश्वर बाहुबली भी उल्लेखनीय मन्दिर बनाए गए। होयसल राजवंश (1100 ई.से 1310 ई.) तक के समय में मैसूर के आस – पास क्षेत्रों में वेलूर, सोमनाथपुर और हेलविद के मन्दिर बनाए गए। इस काल में विष्णुवर्धन शासक के समय कला का विकास हुआ। काकतीय राजवंश 11वीं से 13 वीं ई.के मध्य वारंगल में सहस्त्र स्तम्भ मन्दिर और पालमपेट में रामाप्पा मन्दिर बनवाए गए।

पल्लवों के समकालीन यहां (1100 ई.से 1350 ई.) तक पांडेय एवं चेर वंश के समय मदुरई राजधानी बनाई गई। इनके समय में मंदिरों के चारों और ऊंची दीवारों और विशाल आकर के भव्य प्रवेश द्वारों (गोपुरम) का निर्माण किया गया। कई मंदिरों में मूर्तियां बनवाई गई। विजयनगर साम्राज्य (1330 ई.से 1565 ई.) के काल में हम्पी के महान कलात्मक एवं अति अलंकृत मंदिरों का निर्माण किया गया। कृष्णदेव राय इस वंश में कला प्रिय शासक हुए। विष्णु का विठल स्वामी और राम का हज़ारा राम मंदिर महत्वपूर्ण हैं। इसके पश्चात (1600 ई.से 1700 ई.) तक नायक राजवंश काल में मन्दिर निर्माण में मदुरै शैली विकसित हुई और करीब 30 मन्दिर इस शैली के बनवाए गए। सभी मंदिरों में मंडपों,गोपुरों, विमानों पर उत्कीर्ण शिल्पकृतियां अलंकरण प्रधान हैं। इस काल के मीनाक्षी सुंदरेश्वर, श्रीरंगम, जम्बू केश्वर, तिरुवनन मलाई, तिरुवल्लूर, रामेश्वरम, चिदम्बरम, तिन्वेली एवं श्री वेलकीपुत्तुर प्रमुख उल्लेखनीय मन्दिर माने जाते हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों के मन्दिर

उत्तर मध्यकालीन काल में उत्तर भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक देवी – देवताओं के सुंदर मंदिरों का निर्माण कराया गया। कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, असम, उत्तरप्रदेश एवं उत्तराखंड आदि पहाड़ी क्षेत्रों में बनाए गए मंदिरों की कला भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पृष्टभूमि के कारण भिन्न है। कश्मीर में श्रीनगर के समीप मार्तंड सूर्य मन्दिर शिल्प कला का भव्यतम प्रतीक आज ध्वस्त स्थिति में भी दर्शनीय है।मंदिर का निर्माण सूर्य वंश के राजा ललितादित्य मुक्तापीड ने करवाया था। मार्तंड मंदिर का निर्माण भगवान सूर्य की उपासना के लिये करवाया गया था। मंदिर अपनी स्थापत्य कला, सुंदरता के लिये मशहूर है। वृहत प्रांगन, स्तम्भ, द्वार मंडप एवं चतुर्दिक लगभग 84 प्रकोष्ठों के अवशेष देखे जा सकते हैं। मार्तंड सूर्य मंदिर को कश्मीरी वास्तु शैली का अनुपम और संभवत : एकमात्र उदाहरण माना जाता है।अवंतिपुर में अवंतिश्वर एवं अवंतिस्वामी के मंदिरों में अवंतिस्वामी मन्दिर अभी सही स्थिति में है।

12वीं शताब्दी के बाद उत्तर भारत की मूर्ति एवं मन्दिर निर्माण कला धीरे – धीरे धुमिल होना शुरू हो गई। 13वीं से 17वीं शताब्दी तक सल्तनत कालीन और मुगल कालीन शासन व्यवस्था रहने से मंदिरों का निर्माण ठहर गया, इसके उलट हिंदू मंदिरों को क्षति पहुंचाई गई। इस काल में मुस्लिम कला का विकास हुआ। मुगलों के समय मुगल – राजपूत मिश्रित स्थापत्य शैली का विकास हुआ। देश में ब्रिटिश की जड़े जमने के बाद उनके समय में इतावली और गोथिक शैली के भवनों का निर्माण कराया गया। देश की आजादी के बाद धर्मावलंबियों एवं धार्मिक ट्रस्टों के माध्यम से अनेक मंदिरों का निर्माण किया गया और यह क्रम निरन्तर जारी है।

मन्दिर निर्माण शैलियाँ

स्तूपों के निर्माण के साथ ही हिन्दू मन्दिरों का मुक्त ढांचों के रूप में निर्माण भी आरम्भ हो गया था। हिन्दू मन्दिरों में देवताओं की विषय वस्तु के रूप में पौराणिक कथाएं हुआ करती थीं। भारतीय उपमहाद्वीप तथा विश्व के अन्य भागों में स्थित मन्दिर विभिन्न शैलियों में निर्मित हुए हैं। मंदिरों की कुछ प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार हैं-

नागर शैली

नागर शैली का प्रसार हिमालय से लेकर विंध्य पर्वत माला तक देखा जा सकता है। वास्तुशास्त्र के अनुसार नागर शैली के मंदिरों की पहचान आधार से लेकर सर्वोच्च अंश तक इसका चतुष्कोण होना है। विकसित नागर मंदिर में गर्भगृह, उसके समक्ष क्रमशः अन्तराल, मण्डप तथा अर्द्धमण्डप बने होते हैं। एक ही अक्ष पर एक दूसरे से संलग्न इन भागों का निर्माण किया जाता है।.

द्रविड़ शैली

यह शैली दक्षिण भारत में विकसित होने के कारण द्रविड शैली कहला ई गई। इसमें मंदिर का आधार भाग वर्गाकार होता है तथा गर्भगृह के उपर का भाग पिरामिडनुमा सीधा होता है, जिसमें अनेक मंजिलें होती हैं। इस शैली के मंदिरों की प्रमुख विशेषता है कि ये काफी ऊँचे तथा विशाल प्रांगण से घिरे होते हैं। प्रांगण में छोटे-बड़े अनेक मंदिर, कक्ष तथा जलकुण्ड होते हैं। प्रागंण का मुख्य प्रवेश द्वार 'गोपुरम्' कहलाता है। चोल काल के मंदिर द्रविड़ शैली के सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है.

वेसर

इसका शाब्दिक अर्थ है मिश्रित शैली। नागर और द्रविड़ शैली के मिश्रित रूप को वेसर की संज्ञा दी गई है। यह विन्यास में द्रविड़ शैली का तथा रूप में नागर शैली के समान होता है। दो विभिन्न शैलियों के कारण उत्तर और दक्षिण के विस्तृत क्षेत्र के बीच सतह एक क्षेत्र बन गया जहां इनके मिश्रित रूप में बेसर शैली हुई। इस शैली के मंदिर विंध्य पर्वतमाला से कृष्णा नदी तक निर्मित है।

पगोडा शैली

पैगोडा शैली नेपाल और इण्डोनेशिया का बाली टापू में प्रचलित हिन्दू मंदिर स्थापत्य शेली है। यह शैली में छतौं का शृंखला अनुलम्बित रूप में एक के उपर रहता है। अधिकांश गर्भगृह भूतल स्तर में रहता है। परन्तु कुछ मन्दिर (उदाहरण : काठमांडौ का आकाश भैरव और भीमसेनस्थान मन्दिर) में गर्भगृह दूसरी मंजिल में स्थापित है। इस शैली में निर्मित प्रसिद्ध नेपाल का पशुपतिनाथ एवं बाली का पुरा बेसाकि प्रमुख मन्दिर हैं़।

सन्धार :

इस शैली के मन्दिरों में वर्गाकार गर्भ गृह को घेरे हुए एक स्तंभों वाली वीथिका (गैलरी) होती थी। इस वीथिका का उद्देश्य गर्भ गृह की प्रदक्षिणा था। इस प्रकार सन्धार शैली में प्रदक्षिणा पथ होता है जबकि निरन्धार शैली के मन्दिरों में प्रद्क्षिणा पथ नहीं होता है।

सर्वतोभद्र:

इस शैली के मन्दिरों में चार प्रवेशद्वार होते हैं जो चारों मुख्य दिशाओ में होते हैं। इसको घेरे हुए 12 स्तंभों वाला प्रदक्षिणापथ होता है। इस प्रकार के मन्दिरों में सभी दिशा ओं से प्रवेश किया जा सकता है।

————

(लेखक इतिहास अध्येता, पर्यटन लेखन विशेषज्ञ एवं स्वतंत्र पत्रकार हैं)